नन्दादेवी बायोस्फेयर रिजर्व ने ग्रामीणों

राजशेखर पंत

दक्षिण एशिया के आठ देशों में फैली हिमालयी श्रृखलायें भारत को उन दस राष्ट्रों की पंक्ति में खड़ा करती हैं, जो अपनी जैव विविधता तथा वनों की सघनता के लिए जाने जाते हैं। भारत के भूगोल के 18 प्रतिशत में फैला हिमालय देश के 50 प्रतिशत वनाच्छादित क्षेत्र के लिए उत्तरदायी है तथा भारतीय उपमहाद्वीप की कुल जैव विविधता में इसकी हिस्सेदारी 40 प्रतिशत है। इसके लगभग 9 प्रतिशत क्षेत्र को जैव विविधता संरक्षण तथा परिस्थितकीय कारणों के चलते संरक्षित घोषित कर दिया गया है। ऐसे संरक्षित क्षेत्रों को ले कर बनाई गयी नीतियों तथा स्थानीय निवासियों के हितों में टकराव लगभग बना रहता है। संरक्षण के सरकारी प्रयासों को जहाँ अपने प्रचार तंत्र के माध्यम से प्रायः मुखर बने रहने की सुविधा सहज ही उपलब्ध रहती है वहीं अल्पशिक्षित, असंगठित तथा अपने आसपास के प्राकृतिक परिवेश के साथ सदियों पुराने संबधों के फलस्वरूप विकसित एक ठहरी हुई जीवन शैली वाले स्थानीय समुदायों की आवाज अक्सर अनसुनी रह जाती है।

उत्तराखंड के गढवाल हिमालयी क्षेत्र के दस (चमोली जिला) तथा कुमाऊँ हिमालय के सात गाँवों में फैले नंदा देवी बायोस्फेयर रिजर्व के बफर जोन के निवासियों का दर्द कमोबेश यही है। केन्द्रीय कोर जोन कहे जाने वाले बायोस्फेयर रिजर्व के 625 वर्ग किमी. हिस्से में कोई आबादी नहीं है। किसी भी तरह की मानवीय गतिविधियों के लिये यह क्षेत्र अब पूरी तरह से प्रतिबंधित है। 1,612 वर्ग किमी. के विस्तृत क्षेत्र में फैले बफर जोन के 13 प्रतिशत वनों के प्रबंधन का अधिकार ग्राम स्तर पर संगठित वनपंचायतों को है जब कि बाकी 87 प्रतिशत संरक्षित श्रेणी के अंतर्गत आता है।

बफर जोन के सभी गाँवों में भोटिया मूल के विभिन्न जातिसमूहों का निवास रहा है। 1962 के चीन युद्ध से पूर्व मूल रूप से व्यापारी रही इस जनजाति के आर्थिक जीवन का आधार तिब्बत से होने वाला व्यापार तथा भेड़पालन था। जोशीमठ से 5–6 किमी. दूर मलारी मार्ग पर तोलमा गाँव के लिए शुरू होने वाली साढ़े तीन किमी. लंबी खड़ी चढाई चढ़ते हुए रुद्रसिंह तोलमा नाम के एक अत्यंत जागरूक और संवेदनशील युवा ने हमें बताया कि बुजर्गों की वर्तमान पीढ़ी के साथ शायद उस व्यापार की यादें भी दफन हो जायेंगी। वर्ष 1993 में हुई भारत चीन व्यापार संधि के चलते पिथौरागढ़ जिले की ब्याँस घाटी के लिपुलेख दर्रे से पुनर्जीवित किया गया भारत–तिब्बत व्यापार का नया संस्करण रुद्रसिंह की नजरों में जनजातीय समुदाय के भावनात्मक दोहन से ज्यादा कुछ नहीं है। वे आगे बताते हैं कि कभी ऊन, भोजन और यातायात का एकमात्र साधन रही हिमालयी भेड लाता, पेंग और तोलमा जैसे जनजातीय गावों से जुड़े बुग्यालों के संरक्षित वन क्षेत्र में चले जाने के कारण विलुप्ति के कगार पर हैं। श्रीनगर (गढ़वाल) स्थित जी.बी. पंत इंस्टीट्यूट ऑव हिमालयन इनवार्यनमेंट के प्रभारी वैज्ञानिक डा. आर. के. मैखुरी के अनुसार पिछली सदी के अंतिम तीन दशकों तक भेड़ों की संख्या में दो तिहाई की गिरावट आ चुकी थी तथा यह क्रम अभी जारी है। बकरियां, जिनकी संख्या परंपरागत रूप से भेड़ों से कम रहती है, के मामले में भी स्थिति कमोबेश यही है। पालतू जानवरों को वन्यजीवों से लगातार बढता खतरा भी ग्रामवासियों के लिए चिंता का विषय है। वर्ष 1988 में बायोस्फेयर रिजर्व बनने के बाद 1,000 से अधिक पालतू जानवर सिर्फ चमोली जिले के दस गाँवों में मारे जा चुके हैं। मारे गये इन जानवरों की क्षतिपूर्ति के रूप में ग्रामीणों को मिलने वाले धन का औसत मात्र 18 रु. प्रति परिवार प्रति वर्ष है।

संरक्षित क्षेत्र में चले गये बुग्यालों और वनों से कभी इकट्ठा की जाने वाली लगभग 17 जड़ी–बूटियों के संग्रहण पर लगी पाबंदी के चलते हुए वार्षिक घाटे का अनुमानित मूल्य लगभग 3500 रु. प्रति परिवार है। हालाँकि बदले हुए हालातों में भोटिया–मार्च्छा समुदाय के कुछ गाँवों में लगभग 8 जड़ी–बूटियों की खेती शुरू की गयी है पर पूरी तरह से परंपरागत ज्ञान पर आधारित इस खेती की अपनी सीमाएँ हैं। सरकारी स्तर पर विपणन की मूलभूत सुविधाओं के अभाव तथा खेती की नवीनतम तकनीकों से अनभिज्ञता के चलते जड़ी–बूटी की खेती कृषक की अपनी जरूरतों को पूरा करने तथा परंपरागत बार्टर सिस्टम के तहत बिचौलियों के माध्यम से थोड़ा अनाज और अन्य जरूरतें जुटा लेने से आगे नहीं बढ़ सकी है। हत्थाजड़ी जैसी विलुप्त होती बहुउपयोगी वनस्पति के सफल उत्पादन से उत्साहित ग्रामीण कहते हैं कि यदि नई तकनीकों से उन्हें रूबरू कराने और मार्केटिंग के प्रबंध शासन स्तर पर हो सकें तो वे जड़ी–बूटी उत्पादन के जरिये अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के साथ–साथ संरक्षण के कार्य में भागीदार होने का गौरव भी प्राप्त कर सकते हैं। इस समुदाय के मध्य वर्षों कार्य कर चुके वैज्ञानिक डा. आर. के. मैखुरी कीड़ा–जड़ी या यारसागुंबा के नाम से प्रसिद्ध पौधे के उत्पादन की बात करते हैं। उल्लेखनीय है कि हिमालयन वियाग्रा के नाम से चर्चित केटरपिलर और एक मशरूम के सहजीवन का दुर्लभ उदाहरण कही जाने वाली इस जड़ी के चार लाख रु. किलो तक बिकने की खबरें आम हैं तथा इस पर शोध कर रहे वैज्ञानिक डा. सी. एस. नेगी इसकी पुष्टि करते हैं। रुद्रसिंह तोलमा का मानना है कि जड़ी बूटी की व्यवस्थित खेती में अपार संभावनाएँ हैं, क्योंकि इन्हें जंगली जानवर नुकसान नहीं पहुँचाते। यहाँ सामान्यतया बोई जाने वाली फसलों, जैसे आलू, किडनी बीन, एमेंरथ, शहद इत्यादि के उत्पाद में जानवरों द्वारा किये गये नुकसान का आँकलित मूल्य लगभग 5,000 रु. प्रति परिवार प्रति वर्ष है। यह स्थिति तब है जब कि यहाँ खेती अपनी जरूरतें पूरी करने भर के लिये की जाती है बाजार के लिए नहीं। देखने सुनने में यह राशि भले ही छोटी लगे पर ऐसे क्षेत्र के लिये, जहाँ आर्थिक संसाधनों तथा कार्य कलापों का स्थायी टोटा हो, यह निश्चित रूप से एक बड़ा नुकसान है।

बायोस्फेयर रिजर्व बनने के बाद

ों को विपन्न बना दिया है

अपने पारंपरिक अधिकारों में हुई कटौती से जनजातीय समुदाय निश्चित रूप से दुखी है। यह एहसास कि कोर जोन में स्थित उनकी छानियां (भेड पालकों के आश्रय स्थल) और दुबडी देवी के मंदिर अब उनके नहीं रहे, उन्हें सालता रहता है। बायोस्फेयर रिजर्व के संरक्षण के लिए सरकारी रूप से जिम्मेदार प्रबंधक उन्हें अपने चेहरे पर नया मुखौटा लगाकर दोबारा घुस आये ठेकेदार के उन आदमियों की तरह दिखायी देते हैं जिन्हें उन्होंने 1973 में चिपको आन्दोलन चला कर भगाया था। संरक्षण प्रबंधकों द्वारा कथित रूप से ग्राम विकास के लिए चलायी जा रही योजनाओं और उसमें ग्रामवासियों की बहुप्रचारित भागीदारी को लगभग 90 प्रतिशत स्थानीय निवासी एक सस्ती लॉलीपाप की तरह मानते हैं जो उन्हें इस उम्मीद के साथ पकडा दी गयी है कि उसे चूसते हुए वे अपना मुँह बंद रखेंगे। सन 82 में कोर जोन बन जाने के बाद इस क्षेत्र में स्थित चोटियों, विशेषकर नंदादेवी तथा त्रिशूल श्रृंखला पर पर्वतारोहण को पूर्णतया प्रतिबंधित कर दिया जाना जनजातीय समुदाय के लिए एक अत्यंत त्रासद अनुभव रहा है। रैणी, लाता, पेंग और तोलमा नामक बफर जोन के गाँवों ने, जो कि नंदादेवी और त्रिशूल श्रेणियों की चढाई के लिए प्रारंभिक पडाव हुआ करते थे, वास्तव में इस गतिविधि के अचानक बंद होने की एक भारी कीमत चुकाई है। डॉ. मैखुरी के अध्ययन के अनुसार 1971 से 1981 के मध्य इन गाँवों के प्रत्येक परिवार की मात्र पर्वतारोहण से होने वाली वार्षिक औसत आय 22,342 रु. थी। संपूर्ण बफर जोन की आबादी के लिए यह औसत 7,904 रु. प्रति परिवार आँकलित किया गया है। इस आमदनी में उन वस्तुओं की कीमत नहीं शामिल की गयी थी जो ग्रामीणों को विदेशी पर्यटकों द्वारा उपहार के रूप में प्राप्त हुआ करती थीं। शून्य में आँखें गढाये हुए रुद्रसिंह उदास आवाज में कहते हैं, "किसी भिखारी से भी बदतर हाल में हैं हम आज।" डॉ. मैखुरी का मानना है कि कोर जोन को यदि फिलहाल छोड़ भी दिया जाये तो कम से क्रम बफर जोन क्षेत्र में तो ईको टूरिज्म की शुरूआत की ही जा सकती है। कुछ वर्ष पूर्व बायोस्फेयर क्षेत्र में शामिल किये गये फूलों की घाटी, हेमकुण्ड साहिब तथा बद्रीनाथ क्षेत्र में आने वाले पर्यटकों की रंगीन तस्वीरों तथा ऑकड़ों को प्रचारित करने के अलावा इस दिशा में कोई ठोस पहल नहीं की गयी है।

लाता ग्राम के प्रधान रहे धनसिंह, जो कि विगत दो दशकों से संपूर्ण बफर क्षेत्र की दमदार आवाज माने जाते हैं, बताते हैं कि किस प्रकार वर्ष 2001 में नंदादेवी क्षेत्र को पर्यटन के लिए खोलने की संभावनाओं को तलाशने की नीयत से सरकार द्वारा भेजे गये दल ने स्थानीय लोगों को दरकिनार कर संपूर्ण क्षेत्र को कुछ नामीगिरामी ट्रैवल–एजेंसियों के हवाले करने की भूमिका लगभग तैयार कर ली थी। धनसिंह ईको पर्यटन को इस क्षेत्र का भविष्य मानते हैं, 'बशर्ते यहां के निवासियों को महज पोर्टर बनाये रखने क षड़यंत्र न रचा जाये।' दो दशकों के विस्तृत अंतराल में फैली अपनी लडाई को उन्होंने एक किताब का आकार दिया है, जिसका नाम है 'संघर्षनामा'। हमें उस पुस्तक की एक प्रति भेंट करते हुए वे कहते हैं, "ये हमारे हक–हकूकों के छीने जाने, हम को दिये झूठे आश्वासनों, धोखे और विश्वासघात का किस्सा है।" ठेठ 'पहाडी किस्सागोई' के अंदाज में लिखी गयी यह किताब नंदादेवी बायोस्फेयर रिजर्व की जमीनी हकीकत का पर्दाफाश करने वाला एक जीवंत दस्तावेज है। किताब के बैककवर पर लिखा है– "हमारे लिए भविष्य एक बच्चे की तरह है, अनंत सभावनाओं से भरपूर। अपने भविष्य की रक्षा करना यदि अपराध है, तो हम अपना अपराध स्वीकार करते हैं।"

सन 1973 में रैणीं गाँव से चिपको आन्दोलन के रूप में शुरू हुए इस 'अपराध' की स्वाभाविक परिणति वर्ष 1996 का 'छीनो झपटो' आन्दोलन था। अपराधों का यह अनवरत सिलसिला आज भी जारी है।

(लेखक मनुष्य एवं भारतीय वन्य जीवन के परस्पर संबंधों पर सी. एस. ई. की फैलोशिप के अंतर्गत काम कर रहे हैं।)